विचार बिन्दु

बहुत सी तथा बड़ी गलती किये बिना कोई व्यक्ति बड़ा और महान नहीं बनता। –ग्लेड स्टोन

कृषि शिक्षा के दोहरे मापदंड: निजी कॉलेजों पर डंडा, सरकारी विश्वविद्यालयों में सन्नाटा क्यों?

मानकों के नाम पर निजी संस्थानों की एनओसी पर रोक, लेकिन सरकारी कैंपस में 80 फीसदी तक खाली पदों पर चुप्पी

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण समृद्धि की नींव मजबूत कृषि अनुसंधान और गुणवत्तापूर्ण कृषि शिक्षा पर टिकी है। ऐसे में कृषि शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर केंद्रीय कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान का हालिया बयान अत्यंत महत्वपूर्ण और समसामयिक है। 14 अक्टूबर 2026 को एग्रीविजन के दसवें राष्ट्रीय सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि निर्धारित मानकों के बिना तेजी से खुल रहे निजी कृषि महाविद्यालयों और केवल डिग्रियां बांटने के कारोबार पर सख्ती से अंकुश लगाया जाएगा। उन्होंने यह महत्वपूर्ण घोषणा भी की कि चिकित्सा शिक्षा में राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान आयोग (मेडिकल काउंसिल) की तर्ज पर कृषि शिक्षा को विनियमित करने के लिए जल्द ही एक कृषि परिषद का गठन किया जाएगा। मंत्री का यह कथन सर्वथा उचित है कि केवल फीस वसूलकर डिग्रियां बांटने वाले संस्थानों को संचालित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि विद्यार्थियों की डिग्रियों की विश्वसनीयता और उनके भविष्य की सुरक्षा सुनिश्चित करना सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

निस्संदेह, केंद्र सरकार की इस पहल का स्वागत किया जाना चाहिए। कृषि विज्ञान की डिग्री केवल सरकारी या निजी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने का एक कागजी प्रमाणपत्र मात्र नहीं है, बल्कि यह खेती-किसानी, मृदा स्वास्थ्य, जल प्रबंधन, फसल संरक्षण और देश की खाद्य सुरक्षा जैसे संवेदनशील व महत्वपूर्ण क्षेत्रों में वैज्ञानिक दक्षता का प्रमाण है। यदि बिना पर्याप्त योग्य शिक्षकों, आधुनिक प्रयोगशालाओं, अनुसंधान प्रक्षेत्रों (फार्मों) और व्यावहारिक प्रशिक्षण के विद्यार्थियों को डिग्रियां बांटी जाती हैं, तो इससे न केवल उन विद्यार्थियों के भविष्य के साथ खिलवाड़ होता है, बल्कि दीर्घकाल में देश की संपूर्ण कृषि व्यवस्था और उत्पादन क्षमता को भी अपूरणीय क्षति पहुंचती है।

हालांकि, कृषि शिक्षा में सुधार की इस व्यापक बहस का एक दूसरा और उतना ही गंभीर पहलू भी है, जिसे नीति-निर्माताओं द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। एक ओर जहां निजी कृषि महाविद्यालयों के गिरते मानकों और अनियमितताओं पर कड़े सवाल उठाए जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर स्वयं सरकार द्वारा संचालित कृषि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय भी शिक्षकों एवं संसाधनों की भारी कमी से जूझ रहे हैं। इस संदर्भ में राजस्थान की स्थिति एक ज्वलंत उदाहरण के रूप में हमारे सामने है।

राजस्थान में वर्तमान में पांच सरकारी कृषि विश्वविद्यालय कार्यरत हैं-महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (उदयपुर), स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय (बीकानेर), श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय (जोबनेर), कृषि विश्वविद्यालय (कोटा) और कृषि विश्वविद्यालय (जोधपुर)। प्रदेश की कृषि जलवायु विविधता को देखते हुए इन विश्वविद्यालयों की स्थापना क्षेत्रीय कृषि आवश्यकताओं और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए की गई थी। लेकिन विडंबना यह है कि इन सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षण और अनुसंधान से जुड़े पदों की बड़ी संख्या में रिक्तियां लंबे समय से गंभीर चिंता का विषय बनी हुई हैं।

उच्च शिक्षण संस्थानों, विशेषकर कृषि विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की कमी का नकारात्मक असर केवल कक्षाओं में होने वाले सैद्धांतिक अध्यापन तक सीमित नहीं रहता। कृषि एक प्रायोगिक और क्षेत्र-आधारित विज्ञान है, जिसमें विद्यार्थियों को प्रयोगशालाओं, अनुसंधान फार्मों, खेतों में होने वाले परीक्षणों और किसानों की जमीनी समस्याओं के बीच रहकर सीखना होता है। योग्य और अनुभवी प्राध्यापकों की अनुपस्थिति में न तो विद्यार्थियों को प्रभावी प्रायोगिक प्रशिक्षण मिल पाता है और न ही उच्च स्तरीय कृषि अनुसंधान की निरंतरता को बनाए रखना संभव होता है। कई विभागों में अतिथि संकाय (गेस्ट फैकल्टी) या संविदा शिक्षकों के भरोसे पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिससे स्थायी अकादमिक नेतृत्व और दीर्घकालिक शोध परियोजनाएं प्रभावित हो रही हैं। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि जब स्वयं सरकारी कृषि विश्वविद्यालयों में ही पर्याप्त नियमित शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं, तो कृषि शिक्षा के स्तर को वैश्विक मानकों तक ऊंचा उठाने के सरकारी दावे धरातल पर कैसे साकार होंगे?

कृषि शिक्षा की गुणवत्ता का मूल्यांकन भी एकांगी होने के बजाय व्यापक और समग्र होना चाहिए। निजी और सरकारी-दोनों ही प्रकार के संस्थानों में शिक्षकों की शैक्षिणक योग्यता, शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, प्रयोगशालाओं की स्थिति, आधुनिक उपकरणों, अनुसंधान सुविधाओं, प्रायोगिक प्रशिक्षण की गुणवत्ता और विद्यार्थियों के वास्तविक शैक्षणिक परिणामों की नियमित और निष्पक्ष जांच होनी चाहिए।

यहां सबसे बड़ी विडंबना नियमों के अनुपालन में दिखने वाले दोहरे मापदंड की है। निजी महाविद्यालयों के लिए योग्य शिक्षकों की नियमित नियुक्ति, यूजीसी या निर्धारित मानकों के अनुसार वेतन भुगतान, कर्मचारी भविष्य निधि (ईपीएफ) और बायोमीट्रिक उपस्थिति जैसी शर्तों का कड़ाई से पालन अनिवार्य बताया जा रहा है। इसी क्रम में अक्टूबर 2026 में राजस्थान उच्च न्यायालय ने शैक्षणिक सत्र 2026-27 की बी.एससी. (कृषि) काउंसलिंग में शामिल होने की मांग करने वाले कई निजी कृषि महाविद्यालयों की याचिकाओं को खारिज कर दिया। खबरों के अनुसार, राज्य सरकार द्वारा इन संस्थानों के अनापत्ति प्रमाण पत्र (एनओसी) का नवीनीकरण निर्धारित मानकों और शर्तों का पालन नहीं किए जाने के कारण रोका गया था।

न्यायालय का यह निर्णय और प्रशासन की यह कार्रवाई निश्चित रूप से नियमों के कठोर अनुपालन की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इससे यह संदेश जाता है कि शिक्षा के क्षेत्र में मानकों से समझौता बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। लेकिन सवाल यह है कि नियमन, पारदर्शिता और जवाबदेही की यह कसौटी केवल निजी संस्थानों तक ही सीमित क्यों रहे? यदि निजी संस्थानों से शत-प्रतिशत मानकों के पालन की अपेक्षा की जाती है, तो सरकारी कृषि विश्वविद्यालयों में रिक्त शिक्षण पदों को भरने की समस्या का समाधान भी उतनी ही तत्परता और संवेदनशीलता से होना चाहिए।

इस दिशा में ठोस पहल करते हुए सरकार को चाहिए कि वह राज्य के सभी सरकारी कृषि विश्वविद्यालयों में स्वीकृत, कार्यरत और रिक्त शिक्षण पदों का विश्वविद्यालयवार एवं विषयवार विस्तृत विवरण सार्वजनिक करे। साथ ही, भर्ती प्रक्रियाओं में हो रहे असामान्य विलंब के कारणों को स्पष्ट किया जाए और आवश्यक पदों पर पारदर्शी नियुक्तियों के लिए एक समयबद्ध कार्ययोजना घोषित की जाए। यदि किसी सरकारी विश्वविद्यालय या उसके घटक महाविद्यालय में बड़ी संख्या में-यहां तक कि कुछ रिपोर्टों और चर्चाओं के अनुसार लगभग 70 से 80 प्रतिशत तक-शिक्षण पद रिक्त होने की स्थिति बनती है, तो उसे एक सामान्य प्रशासनिक कमी मानकर टाला नहीं जा सकता। ऐसे आंकड़ों की आधिकारिक समीक्षा और पुष्टि के साथ सरकार को यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि आखिर इतने कम शिक्षकों के सहारे उन संस्थानों में पठन-पाठन, प्रायोगिक कार्य, शोध और विद्यार्थियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था किस प्रकार संचालित हो रही है।

कृषि शिक्षा की गुणवत्ता का मूल्यांकन भी एकांगी होने के बजाय व्यापक और समग्र होना चाहिए। निजी और सरकारी-दोनों ही प्रकार के संस्थानों में शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता, शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, प्रयोगशालाओं की स्थिति, आधुनिक उपकरणों, अनुसंधान सुविधाओं, प्रायोगिक प्रशिक्षण की गुणवत्ता और विद्यार्थियों के वास्तविक शैक्षणिक परिणामों की नियमित और निष्पक्ष जांच होनी चाहिए। जो संस्थान-चाहे वे निजी हों या सरकारी-निर्धारित मानकों पर खरे नहीं उतरते, उनके विरुद्ध नियमानुसार सुधारात्मक या दंडात्मक कार्रवाई होनी चाहिए। इसके साथ ही, जो संस्थान ईमानदारी से मानकों को पूरा करना चाहते हैं, उन्हें आवश्यक नीतिगत सहयोग, संसाधन और योग्य शिक्षक उपलब्ध कराने की एक सुगम व्यवस्था भी विकसित की जानी चाहिए।

अत: समय की मांग है कि केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर कृषि शिक्षा के पुनरुत्थान के लिए एक समग्र, संतुलित और दीर्घकालिक नीति तैयार करें। एक ओर जहां निजी महाविद्यालयों में फर्जी डिग्रियों, मानकों की अनदेखी और व्यावसायिक शोषण पर सख्ती से रोक लगे, वहीं दूसरी ओर सरकारी कृषि विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भारी कमी को दूर करने, अनुसंधान सुविधाओं को आधुनिक बनाने और उनकी वित्तीय स्वायत्तता एवं स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए युद्धस्तर पर कदम उठाए जाएं। अंतत:, कृषि शिक्षा में गुणवत्ता और विश्वसनीयता का पैमाना किसी संस्थान का सरकारी या निजी होना नहीं, बल्कि वहां दी जा रही शिक्षा, शोध और प्रशिक्षण की वास्तविक गुणवत्ता ही होनी चाहिए।

–अतिथि सम्पादक,
प्रोफेसर (डा.) पी. सी. कंठालिया
पूर्व विभागाध्यक्ष (मृदा विज्ञान) एवं मुख्य वैज्ञानिक
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

देश का पथ प्रदर्शक: हमारा संविधान



प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी

26 नवंबर... 1949 में आज ही के दिन संविधान सभा ने हमारे संविधान को अंगीकार किया था। आज हम डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर और संविधान सभा के सभी सदस्यों का स्मरण करते हैं। उनकी महानता इस बात में थी कि उन्होंने एक आधुनिक संविधान के निर्माण में भारत की समृद्ध परंपराओं और हमारी सभ्यता के अनुभव को भरपूर स्थान दिया।

भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में, जहां अनेक पंथ हैं, भाषाएं हैं, रीति-रिवाज हैं, विचार परंपराएं हैं, वहां ये बहुत जरूरी है कि संविधान की गूंज संसद और अदालतों की चारदीवारी से कहीं आगे तक पहुंचे। हमारा प्रयास रहा है कि जन-जन की चेतना से, विशेषकर हमारे युवाओं से संविधान का जुड़ाव और गहरा हो। इससे राष्ट्रीय एकता की वो भावना और मजबूत होगी, जो भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए बहुत जरूरी है। इसी सोच के साथ एक दशक पहले हमारी सरकार ने 26 नवंबर को संविधान दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया था।

हमारा संविधान मेरे साथ करोड़ों भारतीयों की जीवन यात्रा का एक अभिन्न हिस्सा है। बचपन के वो साधारण हालात, जीवन के वो संघर्ष, जब भी मैं उस दौर को याद करता हूं, संविधान के प्रति मेरा हृदय अपार कृतज्ञता से भर जाता है। एक साधारण परिवार में जन्म लेने वाला बालक, जिसे विरासत में कोई विशेषाधिकार या सुविधा नहीं मिली, एक दिन दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की सेवा का दायित्व संभाल सकता है, ये हमारे संविधान की असाधारण शक्ति का प्रमाण है। ये हमारे संविधान की ही देन है कि आज किसी व्यक्ति के जन्म की परिस्थितियां उसके भविष्य की सीमाएं तय नहीं करतीं। हमने अपने विनम्र प्रयासों से संविधान को और अधिक सशक्त बनाकर कृतज्ञता के इस ऋण को चुकाने की कोशिश की है।

प्रख्यात संवैधानिक विशेषज्ञ ग्रैनविले ऑस्टिन ने हमारे संविधान को 'first and foremost a social document' बताया था। विश्व बैंक की हाल में आई एक रिपोर्ट बताती है कि भारत के करीब 50 करोड़ लोग अत्यंत गरीबी से बाहर निकले हैं। पीढ़ियों से चले आ रहे अभावों से मुक्ति पाकर आज करोड़ों माता-पिता अपने बच्चों के बेहतर भविष्य के सपने देख पा रहे हैं। जब प्रधानमंत्री आवास योजना के माध्यम से किसी परिवार को झोपड़ी से निकलकर पक्के मकान में गृह प्रवेश का अवसर मिलता है, तब गरिमापूर्ण जीवन जीने का संवैधानिक संकल्प सही मायनों में साकार होता है।

जब उज्ज्वला योजना किसी मां को धुएं से भरी रसोई की तकलीफों से मुक्ति दिलाती है, तब हम समानता और जनकल्याण के आदर्शों को आगे बढ़ाते हैं। जब आयुष्मान भारत की वजह से किसी गरीब परिवार को कर्ज की चिंता किए बिना अच्छा इलाज मिलता है, तब उसके जीवन में सामाजिक न्याय का संकल्प साकार होता है।

जब मुद्रा योजना और पीएम स्वनिधि के तहत छोटे उद्यमियों और रेहड़ी-पटरी वालों को बिना गारंटी के ऋण मिलता है, तब आर्थिक न्याय की संवैधानिक भावना जमीन पर उतरती है। जब डिजिटल टेक्नोलॉजी, रूपे कार्ड और यूपीआई जैसे प्लेटफॉर्म तक हर नागरिक की पहुंच होती है, तब समावेशिता का संवैधानिक आदर्श साकार होता है। पहले इसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों तक ही सीमित कर दिया गया था। संविधान की शक्ति से सामान्य मानवी को सशक्त बनाने के आज ऐसे कई और उदाहरण हैं।

हमारी सरकार द्वारा किए गए संविधान संशोधनों को भी इसी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। 101वें संविधान संशोधन से जीएसटी जैसे बड़े सुधार का रास्ता खुला, जिसका लंबे समय से इंतजार था। हमारी सरकार द्वारा किए गए 103वें संविधान संशोधन को भी लोगों ने सराहा। 1950 के बाद पहली बार आज हमारे संविधान का अपडेटेड वर्जन आठवीं अनुसूची में शामिल सभी 22 भाषाओं में उपलब्ध है। इससे हमारा संविधान जनसामान्य के और करीब आया है।

1950 में संविधान लागू होने के बाद भी हमारे देश में 1860 के दशक में, गुलामी के दौर में बनी दंड संहिता ही लागू रही। भारतीय न्याय संहिता के माध्यम से हमने अपने क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम में मौलिक बदलाव लाने का प्रयास किया है। गुलामी के दौर की व्यवस्था में दंड पर जोर था। भारतीय न्याय संहिता का जोर नागरिक आधारित व्यवस्था और न्याय पर है।

बीते एक दशक में हमने नागरिकों के कर्तव्यों पर विशेष बल दिया है। यहां मैं एक और सच्चाई देशवासियों के साथ साझा करना चाहता हूं। हमारे इतिहास में ऐसे अवसर भी आए हैं, जब उन्हीं लोगों ने संविधान को कमजोर करने का रास्ता चुना, जिन पर इसकी रक्षा का दायित्व था। विडंबना देखिए कि ये वही लोग हैं, जिन्हें पांच दशकों तक देश की बागडोर संभालने का अवसर मिला।

इस वर्ष, 1951 में हुए पहले संविधान संशोधन के 75 साल पूरे हो चुके हैं। उस समय देश में एक ऐसी सरकार थी, जिसे जनता ने चुनकर नहीं भेजा था। उस सरकार ने अंतरिम संसद में अपने बहुमत का इस्तेमाल करके नागरिकों की मौलिक आजादी छीन ली थी। यह संशोधन देश के पहले आम चुनाव से कुछ ही महीने पहले किया गया था। इससे साफ है कि इसका उद्देश्य चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करना और लोगों के विरोध की आवाज को दबाना था।

इसी प्रकार आपातकाल के दौरान किए गए 42वें संविधान संशोधन के भी 50 साल पूरे हो रहे हैं। इस संशोधन ने न्यायिक समीक्षा की शक्ति को सीमित किया और देश की संस्थाओं के बीच शक्तियों के संतुलन को बुनियादी रूप से बदल दिया। मैं युवाओं से यह भी आग्रह करूंगा कि वे 38वें और 39वें संविधान संशोधनों का भी अध्ययन करें। इससे वे समझ सकेंगे कि सत्ता की लालची और संविधान-विरोधी सोच रखने वाली सरकार किस स्तर तक जा सकती है।

चुनी हुई राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के लिए बार-बार आर्टिकल 356 का दुरुपयोग भी हमारे इतिहास का एक चिंताजनक अध्याय है। एक राजनीतिक दल के नाम करीब सौ बार आर्टिकल 356 थोपने का रिकॉर्ड दर्ज है। एक पूर्व प्रधानमंत्री ने तो इस मामले में अर्धशतक भी लगाया है।

हमारे संविधान निर्माताओं की अपेक्षा थी कि पूरे भारत में संविधान अपने मूल स्वरूप और अपनी मूल भावना के साथ लागू हो। लेकिन 70 साल से भी अधिक समय तक आर्टिकल 370 और 35-ए के कारण जम्मू-कश्मीर में हमारा पूरा संविधान लागू नहीं हो पाया। वहां एससी, एसटी, ओबीसी समाज और महिलाओं के अधिकारों का हनन होता रहा। 2019 में जाकर इस ऐतिहासिक अन्याय का अंत हुआ।

दशकों तक देश के अनेक हिस्सों में, खासकर आदिवासी क्षेत्रों में, नक्सलियों ने बंदूक के दम पर सबसे गरीब व्यक्ति को उन अधिकारों से वंचित रखा, जो हमारे संविधान ने उसे दिए हैं। इस वर्ष नक्सलवाद के खात्मे से मुझे विशेष संतोष मिला है। अब गरीब से गरीब व्यक्ति भी बिना किसी भय के अपने संवैधानिक अधिकारों का इस्तेमाल कर सकता है। ये बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी ओबीसी आरक्षण में कटौती करके मुसलमानों को आरक्षण देना चाहती है। हमारे संविधान निर्माता, विशेषकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, इसके पूरी तरह खिलाफ थे।

हमारे संविधान की यात्रा उन असाधारण महिलाओं के स्मरण के बिना भी अधूरी है, जिन्होंने इसे आकार देने में अहम भूमिका निभाई। लेकिन इस साल के शुरू में जो हुआ, उसने हम सभी को शर्मसार कर दिया। नारीशक्ति को विधायी संस्थाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के उद्देश्य से लाए गए विधेयक को विपक्ष के एक प्रमुख दल ने पारित नहीं होने दिया। एक बार फिर उसने दिखाया है कि संवैधानिक मूल्यों के प्रति उसके मन में कितना कम सम्मान है। मैं देश की नारीशक्ति को भरोसा दिलाता हूं कि उन्हें न्याय दिलाने के हमारे संकल्प को दुनिया की कोई ताकत रोक नहीं सकती। हमारे संवैधानिक लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका स्पष्ट रूप से तय है। दुर्भाग्य से विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी आज विरोध पक्ष से ज्यादा अवरोध पक्ष बनती जा रही है। उसे समझना चाहिए कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में बाधा डालना, अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियां निभाने का विकल्प कभी नहीं हो सकता। आज भारत एक बेहद अहम मोड़ पर खड़ा है। वर्ष 2047 तक विकसित भारत बनाने के हमारे सामूहिक प्रयासों को दो सरल लेकिन शक्तिशाली मंत्र दिशा दे सकते हैं.. हमारी सोच में 'राष्ट्र प्रथम' और हमारे हर कार्य में 'कर्तव्य भाव'। इन दो मंत्रों को अपना मार्गदर्शक बनाकर और संविधान से शक्ति लेते हुए हम आने वाली पीढ़ियों का उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

–नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

संविधान की दुहाई, अंबेडकर की अनदेखी!



डॉ. सौम्या गुर्जर

न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व ये चार शब्द भारत के संविधान की प्रस्तावना में लिखे शब्द भर नहीं है। भारतीय राष्ट्र जीवन को दिशा देने वाले मूल्य हैं। भारत का संविधान हमारे लोकतंत्र का आधार है और इसकी सबसे बड़ी ताकत इसके पीछे निहित विचार हैं। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इन मूल्यों को केवल संवैधानिक प्रावधानों तक सीमित नहीं रखा। वे चाहते थे कि ये भारतीय समाज की जीवनशैली और सार्वजनिक व्यवहार का हिस्सा बनें। आज जब हम संविधान गौरव की बात करते हैं, तो यह केवल अतीत को याद करने का अवसर नहीं, बल्कि यह आत्ममंथन करने का समय भी है कि हम बाबासाहेब के सपनों के भारत के कितने करीब पहुंचे हैं।

जिस संविधान को डॉ. बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर ने देश के लोकतंत्र, नागरिक अधिकारों और सामाजिक न्याय की बुनियाद बनाया, उसी संविधान में कांग्रेस ने अपने शासनकाल में 75 बार संशोधन किए। देश के संविधान में अब तक हुए 106 संशोधनों में से 75 संशोधन कांग्रेस के शासन के दौरान हुए। सवाल यह है कि क्या कांग्रेस के लिए संविधान एक पवित्र राष्ट्रीय संकल्प था या सत्ता की सुविधा के मुताबिक बदलने वाला दस्तावेज? आज संविधान की प्रति हाथ में ले उसकी रक्षा का दावा करने वाली कांग्रेस को अपने इस इतिहास का जवाब देना चाहिए।

बाबासाहेब का संविधान सत्ता को निरंकुश बनाने के लिए नहीं, बल्कि सत्ता को मर्यादा में रखने के लिए था। उसका उद्देश्य हर नागरिक को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का भरोसा देना था। लेकिन कांग्रेस का राजनीतिक इतिहास बताता है कि जब-जब सत्ता और संविधान के बीच चुनाव की स्थिति आई, कांग्रेस ने संविधान की मूल भावना से समझौता करने में संकोच नहीं किया। आपातकाल इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

नेहरू सरकार ने पहले ही संविधान संशोधन के जरिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सीमाएं लगाईं। इंदिरा गांधी के दौर में 24वें और 25वें संशोधन के जरिए संसद की शक्तियों और नागरिकों के मौलिक अधिकारों के बीच संतुलन प्रभावित हुआ। फिर 1975 में आपातकाल लगा। विपक्षी नेताओं को जेल में डाल दिया गया, प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी गई और नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए गए। इसी दौर में 42वां संशोधन लाया गया, जिसे 'लघु संविधान' कहा गया। सत्ता को केंद्र में समेटने और न्यायिक स्वतंत्रता को सीमित करने की कोशिश हुई। जिस संविधान को बाबासाहेब ने लोकतंत्र की ढाल बनाया था, कांग्रेस ने उसी को सत्ता बचाने का औजार बना दिया।

यह केवल संविधान के साथ कांग्रेस का व्यवहार नहीं था, बाबासाहेब के साथ भी उसका रवैया ऐसा ही रहा। कांग्रेस आज उन्हें अपना बताने की कोशिश करती है, लेकिन इतिहास में ऐसे कई प्रसंग हैं जो उसके दावों की पोल खोलते हैं। बाबासाहेब स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री थे, लेकिन नेहरू मंत्रिमंडल में उन्हें वह महत्व नहीं मिला जिसके वे अधिकारी थे। आर्थिक नीति, दलितों के सवाल, कश्मीर और विदेश नीति पर उनके विचारों की अनदेखी हुई। हिंदू कोड बिल को आगे बढ़ाने में नेहरू सरकार की अनिच्छा से वे निराश थे। अंतत: 1951 में उन्होंने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। यह इस्तीफा केवल एक मंत्री का पद छोड़ना नहीं था, बल्कि उस व्यवस्था के प्रति असहमति थी जिसमें सामाजिक सुधार के सवालों को राजनीतिक प्राथमिकता नहीं मिल रही थी। कांग्रेस की उपेक्षा बाबासाहेब के निधन के बाद भी जारी रही। दिल्ली में उनके अंतिम संस्कार को लेकर विवाद रहा। उनके आवास को राष्ट्रीय स्मारक बनाने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। उन्हें भारत रत्न भी कांग्रेस सरकारों ने नहीं, बल्कि 1990 में दिया। आज जो पार्टी बाबासाहेब के सम्मान की बात करती है, उसे बताना चाहिए कि दशकों तक सत्ता में रहते हुए उसने उनके सम्मान के लिए क्या किया?

सामाजिक न्याय के मोर्चे पर भी कांग्रेस का रिकॉर्ड सवालों से घिरा है। वे धर्म के आधार पर आरक्षण और समाज को बांटने वाली राजनीति के समर्थक नहीं थे। कांग्रेस को बताना चाहिए कि वह बाबासाहेब के विचारों के साथ खड़ी है या अपने राजनीतिक तुष्टिकरण के एजेंडे के साथ?

भाजपा ने बाबासाहेब को केवल स्मरण नहीं किया, उनकी विरासत को सम्मान और संस्थागत पहचान देने का काम किया है। जनसंघ ने आपातकाल के बाद लोकतांत्रिक अधिकारों की बहाली के संघर्ष में भूमिका निभाई। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अनुसूचित जाति-जनजाति के हितों को मजबूत करने वाले संवैधानिक कदम उठाए गए और सर्व शिक्षा अभियान के जरिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार हुआ।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण, राज्यों को ओबीसी सूची बनाने का अधिकार और महिलाओं के लिए संसद तथा विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। एससी-एसटी अत्याचार निवारण कानून को भी मजबूत किया गया। बाबासाहेब के जीवन से जुड़े पांच स्थलों को पंचतीर्थ के रूप में विकसित किया गया। दिल्ली में अंबेडकर अंतरराष्ट्रीय केंद्र बनाया गया, उनके लेखों और भाषणों का डिजिटलीकरण हुआ और 26 नवंबर को संविधान दिवस के रूप में मनाने की शुरुआत की गई। गुजरात के मुख्यमंत्री रहते हुए नरेंद्र मोदी ने 2010 में संविधान गौरव यात्रा का नेतृत्व किया था। संविधान के 75 वर्ष पूरे होने पर 'हमारा संविधान, हमारा स्वाभिमान' अभियान चलाया गया।

बाबासाहेब की सोच राष्ट्रीय एकता और समान नागरिक अधिकारों की भी पक्षधर थी। उन्होंने अनुच्छेद 370 का विरोध किया था। 2019 में मोदी सरकार ने इसे समाप्त कर राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में ऐतिहासिक निर्णय लिया। समान नागरिक संहिता और महिलाओं के समान अधिकारों को लेकर बाबासाहेब का दृष्टिकोण भी भाजपा की वैचारिक प्रतिबद्धता का हिस्सा है। आज कांग्रेस संविधान की किताब हाथ में लेकर राजनीति कर सकती है, लेकिन इतिहास के सवालों से बच नहीं सकती। बाबासाहेब का नाम लेना आसान है, उनके विचारों पर चलना कठिन। भाजपा का विश्वास है कि अंबेडकर की विरासत किसी परिवार की राजनीतिक जागीर नहीं, बल्कि राष्ट्र की धरोहर है। अंत्योदय और 'सबका साथ, सबका विकास' के संकल्प के साथ हम सामाजिक न्याय को जमीन पर उतारने के लिए प्रतिबद्ध हैं। यही बाबासाहेब के प्रति सच्चा सम्मान है।

आइए, इस संविधान दिवस पर हम संकल्प लें कि बाबा साहब के समतामूलक भारत के सपने को साकार करने, अपने अधिकारों के साथ कर्तव्यों का निर्वहन करने और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को मजबूत बनाने में अपना योगदान देंगे।

–डॉ. सौम्या गुर्जर, पूर्व महापौर, जयपुर ग्रेटर।

संविधान बचाने से पहले संविधान समझें!



सूर्य प्रताप सिंह राजावत

आज देश में लगभग प्रत्येक राजनीतिक दल, संगठन और सार्वजनिक मंच से लोकतंत्र बचाने, संविधान बचाने और राष्ट्र की रक्षा करने की आवाज सुनाई देती है। राजनीतिक विमर्श में संविधान और लोकतंत्र की चर्चा पहले से कहीं अधिक प्रमुखता प्राप्त कर रही है। लेकिन इस व्यापक विमर्श के बीच एक बुनियादी प्रश्न उठता है कि क्या हम वास्तव में उस संविधान को जानते और समझते हैं, जिसकी रक्षा करने का दावा किया जा रहा है? किसी भी विषय की रक्षा करने से पहले उसका वास्तविक स्वरूप, उद्देश्य और मूल भावना समझना आवश्यक है। संविधान के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जब विभिन्न राजनीतिक दल यह दावा करते हैं कि संविधान खतरे में है अथवा लोकतांत्रिक संस्थाओं पर संकट है, तब देश के युवा, नागरिक और मतदाता इतने जागरूक अवश्य होने चाहिए कि वे अपने विवेक और उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह समझ सकें कि किस राजनीतिक दल की नीतियां, निर्णय और कार्य संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप हैं तथा किन कार्यों से संविधान की मूल भावना प्रभावित होती है। लोकतंत्र में यह निर्णय राजनीतिक नारों के आधार पर नहीं, बल्कि संविधान के ज्ञान, संवैधानिक सिद्धांतों और निष्पक्ष विवेक के आधार पर होना चाहिए।

इसी पृष्ठभूमि में 'संविधान जानो' (Know Your Constitution – KYC) अभियान की आवश्यकता महसूस होती है। इस अभियान की सफलता के लिए संविधान को केवल विधिक दस्तावेज अथवा कानून की पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं होगा। नागरिकों का इससे भावनात्मक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जुड़ाव भी आवश्यक है। संविधान से जुड़े ऐसे रोचक और प्रेरणादायक तथ्यों का प्रचार होना चाहिए, जो प्रत्येक भारतीय में अपने संविधान के प्रति आत्मीयता और गौरव का भाव उत्पन्न करें। भारतीय संविधान की मूल प्रति इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस अभियान का एक महत्वपूर्ण संदेश यह होना चाहिए कि प्रत्येक पीढ़ी को अपने समय के अनुरूप कुछ दायित्व प्राप्त होते हैं। संविधान सभा ने अपने समय में अनेक क्रांतिकारी निर्णय लिए। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, अस्पृश्यता का उन्मूलन, महिलाओं की समानता, बालश्रम के निषेध तथा उपाधियों की समाप्ति जैसे प्रावधान उस समय के सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ में दूरगामी परिवर्तनकारी कदम थे। आज की युवा पीढ़ी को भी यह समझना होगा कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया निरंतर चलने वाली यात्रा है और प्रत्येक पीढ़ी की अपनी जिम्मेदारियां होती हैं। इसी दृष्टिकोण से समान नागरिक संहिता, पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के प्रश्न तथा अन्य राष्ट्रीय और संवैधानिक लक्ष्यों पर लोकतांत्रिक विमर्श को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार विधायिका के सदस्यों के लिए न्यूनतम शैक्षिणक योग्यता तथा विद्यालयों और महाविद्यालयों में एनसीसी की तर्ज पर अनुशासन, नागरिक कर्तव्य और राष्ट्रीय चेतना से संबंधित प्रशिक्षण जैसे विषयों पर भी व्यापक चर्चा हो सकती है।

संविधान में अनेक प्रावधान ऐसे हैं जिनका क्रियान्वयन अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाया है। इसी प्रकार न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका सहित सभी संवैधानिक संस्थाओं को यह समझना होगा कि विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा धर्म, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता के बीच संवैधानिक संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। साथ ही भारत की एकता, अखंडता और संवैधानिक व्यवस्था की सर्वोच्चता को बनाए रखने का दायित्व भी सभी संस्थाओं और नागरिकों का है।

संविधान निर्माण की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को समझना भी इस अभियान का अनिवार्य अंग होना चाहिए। विभिन्न समितियों की सिफारिशों और विचारों को समाहित करते हुए प्रारूपण समिति ने डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में प्रारूप संविधान तैयार किया। अंतत: 26 न